

किताबों पर रोक से बनती कम, बिगड़ती ज्यादा है बात

चंद्रभूषण

पिछले दिनों जम्मू-कश्मीर में एक सरकारी आदेश से वहाँ के समकालीन इतिहास और मानवाधिकारों की स्थिति से जुड़ी 25 किताबों को प्रतिबंधित करने के फैसले से जुड़े नफ़े-नुकसान को लेकर भी कुछ बातचीत होनी चाहिए। हालाँकि यह दुनिया भर में किताबों को लेकर दिख रहे सरकारी रवैये का ही एक रूप है। प्रतिबंध और ज़ब्ती का यह आदेश एक राज्य तक, बल्कि एक संघशासित क्षेत्र तक सीमित है। पूरा देश इसके दायरे में नहीं आता। सो आशा है कि भारत सरकार के लिए संवेदनशील जानकारियाँ जुटाने वाला तेज़-तर्रार अमला आम दायरे को संबोधित इस सामान्य टिप्पणी को आसानी से 'अलगाववादी' और 'भारत की संप्रभुता-अखंडता को खतरा पहुँचाने वाली' नहीं मान लेगा।

किताबों पर या किसी खास मीडिया प्रॉडक्शन पर किसी भी हालत में रोक लगनी ही नहीं चाहिए, ऐसा आग्रह तो व्यावहारिक दुनिया में जीने वाला कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में किसी धर्म या समुदाय के खिलाफ़ उकसावे भरी कोई बात समाज का बहुत नुकसान कर सकती है। भारत में पिछले सौ वर्षों में प्रतिबंधित किताबों की सूची में कुछेक निश्चित रूप से ऐसी श्रेणी में आती हैं और उनसे प्रतिबंध हटाने को लेकर कोई भी सरकार कभी विचार तक नहीं करेगी। इन 25 किताबों में एक भी इस दंगे-फसाद वाली श्रेणी में तो नहीं आती।

जो भी हो, एक बुनियादी बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि किताबों पर, और खासकर रचनात्मक साहित्य पर रोक ज्यादातर मामलों में उलटा असर पैदा करती है। सआदत हसन मंटो का मुक़ाम उर्दू के कथा साहित्य में लगभग चोटी का है, लेकिन उनकी ख्याति में कुछ भूमिका उनकी कहानियों पर लगी रोक और उनकी ज़ब्ती की भी है। ऐसा उनकी कुल छह कहानियों के साथ अलग-अलग मौकों पर हुआ। तीन बार अविभाजित भारत में और तीन बार पाकिस्तान में। उनकी ये सभी छह कहानियाँ- 'धुआँ', 'बू', 'काली शलवार', 'खोल दो', 'ठंडा गोश्त' और 'ऊपर नीचे और दरमियान' बाकी मंटो साहित्य के साथ आज दुनिया के लिए उर्दू भाषा का उपहार समझी जाती हैं।



चित्तप्रसाद भट्टाचार्य (भारत), 1952

बांग्लादेश में जन्मी और एक अर्से से भारत में रह रही लेखिका तस्लीमा नसरीन का साहित्यिक कद मंटो जैसा भले न हो लेकिन अपने लेखन के लिए उन्होंने न केवल अपने देश में बल्कि भारत में भी प्रतिबंधों का सामना किया। बांग्लादेश में तो खैर 'लज्जा' उपन्यास और अखबारी स्तंभ 'नष्ट मेयेरे नष्ट गद्य' के लिए उनकी जान ही जोखिम में पड़ गई थी, भारत में भी पश्चिम बंगाल सरकार ने उनकी आत्मकथा के एक अंश 'द्विखंडितो' को दुष्प्रचारमूलक और अश्लील बताकर प्रतिबंधित किया। इन क्रदमों की कुछ भूमिका निश्चित रूप से तस्लीमा की लोकप्रियता में भी रही। सलमान रश्दी का उपन्यास 'द सैटनिक वर्सेस' उनके विपुल लेखन में सर्वश्रेष्ठ नहीं है और इसके बिना भी उनकी प्रतिष्ठा में कोई बड़ी गिरावट शायद नहीं आएगी। लेकिन भारत द्वारा इस पर लगाए गए प्रतिबंध और ईरान में उनके खिलाफ जारी फ़तवे ने उन्हें लेखन से परे एक ऐसा लेखक बना दिया, जिसकी गिनती सदी के नायकों में होती है।

ज़ाहिर है, किसी किताब पर रोक लगाते समय सरकारों को इसके उलट नतीजों पर भी अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। इन 25 किताबों की सूची पर नज़र डालें तो इनमें से कुछ तो बीस-पचीस साल पुरानी या आउट ऑफ़ प्रिंट हैं। कुछेक का इस्तेमाल कश्मीर पर शोध करने वाले रेफ़रेंस मटीरियल के रूप में करते हैं। ज्यादातर अंग्रेज़ी और कुछ उर्दू किताबों की इस सूची में हरेक को पढ़ने का मौक़ा भी शायद दो-चार लोगों को ही मिला होगा।

नमूने के तौर पर संविधान विशेषज्ञ ए.जी. नूरानी की किताब 'द कश्मीर डिस्प्यूट 1947-2012' इसमें शामिल है, जिसे अलगाववाद को बढ़ावा देने वाली किताब की तरह आज तक शायद ही किसी ने देखा हो। 'कंटेस्टेड लैंड्स' और 'कश्मीर ऐट द क्रॉसरोड्स', दोनों किताबें सुमंत्र बोस की हैं। वे रिश्ते में नेताजी सुभाष चंद्र बोस के पोते लगते हैं और बतौर अकादमीशियन उनकी एक वैश्विक धाक रही है। देश को नुकसान पहुँचाने का इरादा रखने का तो आरोप भी उन पर कभी नहीं चिपकेगा।



ब्रिटिश लेखिका और इतिहासकार विक्टोरिया शोफील्ड की 'कश्मीर कन्फ्लिक्ट : इंडिया पाकिस्तान ऐंड द अनएंडिंग वॉर' को

एक दस्तावेज़ी चीज़ माना जाता रहा है। भावना भड़काने जैसा कोई मामला यहाँ भी नहीं खोजा जा सकता। अलबत्ता 2021 में आई क्रिस्टोफर स्नेडेन की 'इंडिपेंडेंट कश्मीर : ऐन इनकंप्लीट ऐस्पिरेशन' जरूर उप-राज्यपाल की आशंकाओं को छूती हुई मानी जा सकती है। पाकिस्तान और बांग्लादेश के अलावा कश्मीर में भी इस्लामी विचारधारा वाली पार्टी जमात-ए-इस्लामी के संस्थापक मौलाना मौदूदी की किताबें राजनीति में धार्मिक कट्टरपंथ को बढ़ावा जरूर देती हैं लेकिन उन पर रोक बाबा आदम के ज़माने की एक चीज़ पर लट्ट भांजने जैसी है।

स्थानीय बुद्धिजीवियों की लिखी किताबों में सबसे वजनी नाम कश्मीर टाइम्स की संपादक अनुराधा भसीन की 'द डिस्मैटल्ड स्टेट, द अनटोल्ड स्टोरी ऑफ़ कश्मीर आफ्टर 370' है। प्रतिबंधित और ज़ब्तशुदा किताबों की सूची में यह अपेक्षाकृत नई है। लेकिन कश्मीर टाइम्स के दोनों संपादकों, पिता वेद भसीन और बेटी अनुराधा भसीन से केंद्र सरकारों की नाराज़गी चाहे जितनी भी रही हो, देश की संप्रभुता और अखंडता के खिलाफ़ काम करने का आरोप उन पर कभी नहीं लगा। जगह बचाने के लिए अरुंधती राय के निबंध संग्रह 'आज़ादी' समेत कई नामी-गिरामी देसी-विदेशी लेखकों और उनकी किताबों पर चर्चा फिलहाल छोड़ी जा सकती है।



किताब के साथ एक महिला, फ़रनैंड लेजर (फ़्रांस), 1923

प्रतिबंध और ज़ब्त की इस कार्रवाई के व्यावहारिक फलित पर ठहरकर सोचें तो पहला मामला इस फैसले पर अमल का ही ध्यान में आता है। किताब की दुकानों और लाइब्रेरियों से, या सूचना मिलने पर शायद कुछ निजी संस्थानों और घरों से भी ये किताबें छपा मारकर ज़ब्त कर ली जाएंगी, लेकिन क्या ट्रेन, बस, टैक्सी या हवाई जहाज से जम्मू-कश्मीर पहुँचने वाले हर

व्यक्ति का सूटकेस और होल्डाल खुलवाकर भी इनकी चेकिंग की जाएगी ? या फिर, कोई प्रतिबंधित किताब जम्मू में नहीं मिलती और बगल के शहर पठानकोट में मिल जाती है तो राज्य से उसके तार कैसे तोड़े जा सकेंगे ?

निष्कर्ष वही कि जम्मू-कश्मीर के मामले में भारत सरकार को न तो हड़बड़ी में कोई कदम उठाना चाहिए, न ही वहाँ सफलता के दावे करने में किसी तरह की जल्दबाजी दिखानी चाहिए। जब भी ऐसा होता है, नुकसान पूरे देश को उठाना पड़ता है। जिन लेखकों की किताबें प्रतिबंधित की गई हैं उनमें कुछेक दुनिया के बौद्धिक हलकों के जाने-पहचाने नाम हैं। कोई भी प्रतिष्ठित मंच उन्हें शौक से अपने यहाँ जगह देता है और अभी जम्मू-कश्मीर में भारत सरकार के रुख पर वे सभी कुछ न कुछ बोल रहे हैं।

किताबों के प्रतिबंध को लेकर एक आम बात कहनी हो तो हाल में अमेरिका में हुए एक सर्वे का हवाला दिया जा सकता है। पिछले कुछ सालों से वहाँ भी किताबों पर प्रतिबंध की लहर आई हुई है। यह काम मुख्यतः वहाँ राज्यों के स्तर पर सामाजिक रूप से चल रही क्रिया-प्रतिक्रिया के प्रभाव में हो रहा है। मूल में डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन खेमों की राजनीतिक लड़ाई ही है, लेकिन राज्य सरकारें अपनी सारी गोलियाँ अभिभावकों की आड़ लेकर दाग रही हैं। 'नई पीढ़ी पर गलत प्रभाव' का हवाला देते हुए वहाँ अलग-अलग राज्यों में ऐसी किताबें प्रतिबंधित की जा रही हैं, जिनसे एलजीबीटीक्यू (समलैंगिक और भिन्न यौन रुझानों वाले समुदाय) के पक्ष में या किसी अश्वेत व्यक्ति-विशेष की तरफ़, या फिर हिंसक कार्यों को लेकर कोई सहानुभूति बनती हो।

अमेरिकन लाइब्रेरी असोसिएशन (एएलए) नाम की एक प्रतिष्ठित संस्था द्वारा 2021 से प्रतिबंध के दायरे में आई इस तरह की सभी किताबों को लेकर कराए गए सर्वे में पाया गया कि प्रतिबंध के बाद इनकी बिक्री उससे पहले की अवधि की तुलना में औसतन 12 प्रतिशत बढ़ गई। बहुत चौंकाने वाला निष्कर्ष तो यह नहीं कहा जा सकता। प्रतिबंध किस तरह आकर्षण का कारण बनता है, इस बारे में कुछ नतीजे हम ऊपर कॉमनसेंस से भी निकाल चुके हैं। लेकिन अमेरिकियों ने अभी इसके पक्ष में एक आंकड़ा रख दिया है। जम्मू-कश्मीर में इन किताबों पर लगी रोक और इनकी ज़बती इनकी कशिश और न बढ़ा दे, सरकार (महामहिम उप-राज्यपाल) को आगे यह भी देखना होगा।

(लेखक चर्चित कवि और विचारक हैं)